Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

संत नितानंद के काव्य में औदात्त्य की अभिव्यंजना

प्रो. सुकर्मवती देवी
हिंदी विभाग, इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंटीग्रेटेड एंड ऑनर्स स्टडीज़, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सारांश:

संत नितानंद जी ने अपनी वाणी 'सत्य- सिद्धांत- प्रकाश' के माध्यम से संत साहित्य व समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। उनका सम्पूर्ण साहित्य मानवीय मूल्यों पर केंद्रित है। उनकी वाणी मानव-प्रेम से लेकर ईश-प्रेम तक सामाजिक जीवन के उदात्त विचारों के समृद्ध भंडार को संजोए हुए है। तत्कालीन समय में वर्ग वैषम्य और जातिभेद अपनी सीमा पार कर रहे थे। उन्होंने एक सजग प्रहरी की तरह वर्णाश्रम व्यवस्था, जातिगत संकीर्णता, सांप्रदायिक भेदभाव, मूर्तिपूजा, बाह्याडम्बरों, पाखंडों और विषय-विकारों आदि पर जमकर प्रहार करते हुए अंत:करण की शुद्धता पर बल दिया। परमतोष परमात्मा के प्रति प्रणय-भाव की अनुभूति के साथ उन्होंने अनेक रहस्यानुभूतियों की अभिव्यंजना की है। बह्म, जीव, जगत व माया के प्रति उन्होंने जिन दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त किया है, वे अत्यंत उदात्त एवं उत्कृष्ट हैं। इन्होंने दर्शन, धर्म एवं समाज में व्याप्त कुरीतियों का खंडन कर लोगों को सत्कर्म करने के लिए प्रेरित किया जो तत्कालीन समाज के लिए महान संदेश था और आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। उनके काव्य में सत्य, अहिंसा, करूणा, समानता व स्वतंत्रता आदि शाश्वत मूल्यों की स्थापना की गई है, जो सामाजिक जीवन की अमूल्य धरोहर हैं। आचार और विचार के शील, क्षमा, सहिष्णुता निर्वैर आदि भावों की गहन व्याख्या करने में उनकी वाणी बेजोड़ है। उनके काव्य में विचार, भाव एवं शैली सभी दृष्टियों से औदात्त्य का मणिकांचन संयोग हुआ है।

मुख्य शब्द : उदात्त, मानव-मूल्य, दार्शनिक, भेदभाव, रहस्यानुभूति, संकीर्णता।

साहित्य का विकासक्रम विभिन्न प्रेरणाओं से फलीभूत होकर निरंतर एक सार्थक उद्देश्य की ओर गमन करता है। मध्ययुग का भक्तिकाल भी अनेक संत महात्माओं एवं विद्वान कवियों द्वारा रचित व संपादित विशिष्ट रचनाओं व ग्रंथों के माध्यम से दैदिप्यमान होकर उज्वलता का पावन प्रकाश बिखेर रहा है। इस युग की रचनाओं में शाश्वत जीवन दर्शन को प्रस्तुत कर सनातन मूल्यों को स्थापित किया गया है। सामाजिक विकृतियों व सांप्रदायिक भेदभाव पर प्रहार करते हुए तत्कालीन कवियों ने वाणी व आचरण की स्वच्छता और उत्कर्षता पर बल दिया है।

औदात्त्य शब्द उदात्त से बना है। "हिन्दी में औदात्य शब्द आंग्ल भाषा के 'सब्लाइम' शब्द के (भव्य, महान व उत्कृष्ट आदि) पर्याय के रूप में प्रचलित है।"[1] डॉ. कुमार विमल लिखते हैं - "उदात्त (सब्लाइम) वह सौन्दर्य है, जो आश्रय को पहले पराभूत और तदनंतर आकर्षित करता है। जैसे गरजते हुए सागर को देखकर तटस्थ व्यक्ति पहले भयंकरता से आक्रान्त होकर विस्मय भाव से हक्का-बक्का हो जाता है, किंतु तत्पश्चात उसकी विशालता से अभिभूत होकर वह चित्त-स्फीत हो जाता है। अत: उदात्त भावना में पहले आघात तदुपरांत आह्लादन है।"[2] लौंजाइनस इसकी व्याख्या और गहराई से करते दिखाई देते हैं- "उदात्त का प्रभाव अत्यंत प्रबल एवं दुर्निवार होता है। साधारणत: औदात्त्य के उन उदाहरणों को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनंद दे सके।"[3] कहने का अभिप्राय यही है कि जो व्यक्ति अपनेपन से ऊपर उठकर परिवार, जाति, वर्ग, धर्म तथा समुदाय की सीमाओं को लाँघ कर संकीर्णता से परे जीवन को एक नई अर्थवत्ता देता है, लोक कल्याण हेतु चिन्तन करता है, उसकी यह प्रतिभा ही उसका उदात्त कर्म है। जहाँ तक उदात्त काव्य की बात है, उसमें विषयगत प्रेम, उत्साह, भय, विस्मय, शोक व निर्वेद भाव की अभिव्यंजना के साथ उदात्त शैली (समुचित अलंकार योजना, गरिमामय भाषा एवं उत्कृष्ट रचना विधान) की भी प्रधानता रहती है।

कवि की विराट कल्पना आदिकालीन साहित्य से लेकर आज तक काव्य में अनेक रूपों में उदात्त की अभिव्यक्ति करती आयी है। लोंजाइनस ने कवि के व्यक्तित्व में औदात्त्य के बोध की महीन व्याख्या की है- "औदात्त्य आत्मा की महानता का प्रतिबिंब है।..... सच्चा औदात्त्य केवल उन्हीं में प्राप्त है जिनकी चेतना उदात्त एवं विकासोन्मुख है। जिनका सारा जीवन तुच्छ एवं संकीर्ण विचारों के अनुसरण में व्यतीत होता है, वे संभवतः कभी भी मानवता के लिए कोई स्थायी महत्व की रचना प्रस्तुत करने में सफल नहीं होते। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि जिन के मस्तिष्क उदात्त धारणाओं से परिपूर्ण हैं, उन्हीं की वाणी में उदात्त शब्द झंकृत हों।"[4] ऐसे काव्य में विश्व मानवता के लिए एक महान संदेश गुम्फित होता है।

उत्तर भारतीय संत परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले हरियाणवी संत नितानंद जी का साहित्यिक महत्व भी अक्षुण्ण है। वे एक उच्चकोटि के कवि होने के साथ साथ साधक एवं दार्शनिक भी थे। 'सत्य-सिद्धांत-प्रकाश' में उनकी निर्मल वाणी की भागीरथी साखियों के रूप में अजस्र प्रवाहित है। उनकी आचारमूलक साधना उनके उदात्त विचारों का ही परिणाम है जो मानव-मूल्यों की दृढ़ आधारशिला निर्मित करती है। उनका कर्म सौन्दर्य असीमित एवं अनंत है। यदि उनके काव्य के उदात्त स्वरूप को जानना है तो उनके व्यक्तित्व की परछाई (कृतित्व) की तह में झाँकना पड़ेगा क्योंकी कवि के व्यक्तित्व का उसकी रचना से गहरा संबंध रहता है। नितानंद जी के समूचे व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनकी काव्य रचना भी उदात्त के आलोक से आलोकित थी। उनका कर्म सौन्दर्य 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता'। की तरह असीमित है। वे सबसे पहले एक निर्गुण संत थे और उनका उपास्य ब्रह्म मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार आदि की पहुँच से दूर है, त्रिगुणातीत है, घट-घट में समाया हुआ है तथा काल और मृत्यु से परे है। जिसमें न हिंदू और तुर्क का भेद है, न अल्हा और राम का मतभेद है, ऐसे सूक्ष्म ब्रह्म का परिचय देते हुए नितानंद जी कहते हैं -

"मन इन्द्री पहुँचे जहाँ, सो नहीं मेरा राम।

नितानंद गुण तीन से, परे पीव मुक्काम।।

नितानंद इस जगत से, परे राम का देस।

जो कुछ जग मैं देखियाँ, सो नहीं रहे हमेस।"[5]

जीवन की नश्वरता एवं संसार की क्षणभंगुरता ही शाश्वत अटल सत्य है, जो उनके उदात्त चिन्तन का परिचायक है। उनके अनुसार मनुष्य का शरीर बढ़ती उम्र के साथ साथ अंजुली के नीर की भाँति बहता रहता है। वे बार-बार जीव को चेताते हैं कि यह सब तो चला-चली का मेला है, 'बालू की भीत' की तरह देखते ही देखते सब ढह जाएगा। जीव रूपी यात्री इस संसार रूपी धर्मशाला में एक रात्रि भर (थोड़ा समय) विश्राम के लिए आता है और सवेरा होते ही उसे वहाँ से प्रस्थान करना होता है। परंतु अज्ञानी जीव तुम इस झूठे स्वप्न को नित्य मान बैठे हो। वे मनुष्य को झूठी दिलासाओं की बजाय चेतावनी देते हुए कहते हैं-

"नितानंद तन पिंजरा, खुलें रहैं नौ द्वार।

न जानो कद उड़ चलै, पक्षी-प्राण हमार।"[6]

नितानंद जी के अनुसार इस संसार में केवल ब्रह्म का स्वरूप ही पूर्ण सत्य है। न वह स्त्री है,न पुरुष। देहमुक्त होकर भी घट-घट का रमैया है। सारा जड़-चेतन ब्रह्म रूपी सिंधु की तरंगों से नाच रहा है। रूप और नाम का अभिन्नभेद पाकर आख़िर सब ईश्वर के ही अंश हैं। उसकी सत्ता सभी में है फिर भी वह कर्ता भाव से विहीन है। असंभव को संभव बनाने में सर्वशक्तिसम्पन्न एवं समर्थ है। उनके ब्रह्म का परिचय अपरम्पार है-

"गूंगा हुआ बहिरा हुआ, जानत हुआ अजान।

आदि अंत नहीं पाइए, नित्यानंद हैरान।।

पण्डित, ज्ञानी और गुनी, मुनि कहैं आराध।

नितानंद कथ कथ थके, पीछे कहें अगाध।।"[7]

साधारण मनुष्य के लिए उसकी थाह पाना अत्यंत मुश्किल है। यह सब जानते हुए भी वह परमात्मा को भुला देता है, जो उसे इस सुंदर दुनिया में लेकर आया है, जहाँ उसे रंगीले संसार में हँसते, नाचते-गाते, रिश्ते-नातों का खिलखिलाता अंबर मिला है। धीमे ज़हर की भाँति मनुष्य स्वार्थ में धीरे-धीरे आकण्ठ डूब जाता है, उसका अहं उसे अंधा बना देता है, जो अंत में उसके लिए पतन के द्वार खोलता है। यही तो प्रवंचक माया है जो उसकी आँखों पर बेईमानी का चश्मा लगाकर उसे दिग्भ्रमित कर देती है। नितानंद जी कहते हैं कि माया ही माता के रूप में जन्म देती है, पुत्री के रूप में धन हड़पती है और पत्नी रूप में मनुष्य का भक्षण कर जाती है। मीठा बोलकर यह सब कुछ हड़प लेती है, मान-मर्यादा, नैतिकता व निष्ठा का नामोनिशान मिटा देती है-

"देखन मांहि सुहावनी, खाती बेर मिठाय।

नितानंद भीतर बड़ै, मारे ज़हर चढ़ाए॥"[8]

"आसा तरकस में भरे, विषय वासना बान।

मार लिए पंछी घने, माया कठिन कमान।।"[9]

माया के कारण ही आत्मा और परमात्मा की निकटता इस घोर कलियुग में सहज संभव नहीं है। जब साधक को इस परमसत्ता के अस्तित्व का बोध होता है तो उसे एक तो ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में सौंदर्य की झलक दिखाई देने लगती है, तो दूसरी ओर उसे लौकिक जीवन के बाह्याडम्बर एवं भोग-विलास अत्यंत तुच्छ और निस्सार प्रतीत होने लगते हैं। जब सतगुरु ज्ञान रूपी अंजन लगाता है, सब काल-कलंक समाप्त हो जाते हैं। वह शिष्य का पूर्ण रूपांतरण कर देता है उनका सामर्थ्य वर्णनातीत है-

"नाम जहाज चढ़ाए कर, कर जगत के पार।

नितानंद निर्मल हुए, सतगुरू के दीदार॥"[10]

यह सुखद अनुभूति अत्यंत उदात्त है। लेकिन सच्चे गुरु को इस सांसारिक जगत में चिन्हित करना बड़ा दुष्कर कार्य है, पर जो अपनी उदात्त भावना से उसे पहचान लेता है, गुरु की कृपा से लौकिक तृष्णाओं का परित्याग कर, दुष्कर्मों से विरक्ति लेकर तथा सुकर्म में वृद्धि कर वह अंततः सत्कर्म की ओर अग्रसर हो जाता है। फिर जो घटित होता है, वह क्षण आश्चर्य से परे है, जहाँ आनंद ही आनंद है -

"प्रितम मिल सुख में मिली, तन की सुरत बिसार।

मैं- तूं- तूं- ताँ मिट गई, जब देखा दरबार॥"[11]

संयोग- वियोग की यह स्थिति बहुत अद्भुत है। नितानंद जी के अनुसार सतगुरु ऐसे व्यापारी हैं, जिनके हाथ रूपी तराजू में परमात्मा रूपी सौदा मिलता है। डॉ. रामनारायण पाण्डेय ने भी संत कवियों की इस दृष्टि से प्रशंसा करते हुए लिखा है- "हिन्दी के संत कवियों में हम देखते हैं कि गुरु द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर अपनी प्रबल भक्ति भावना के कारण उन्होंने परमात्मा का आंशिक तथा पूर्ण साक्षात्कार किया। साक्षात्कार में आनंदानुभव को उन्होंने

व्यक्त किया। 'स्वान्तः सुखाय' तथा 'बहुजन हिताय' का आदर्श सम्मुख रखकर अथवा यों कहना उचित होगा कि भावों का अदम्य वेग उनके मानस से स्वतः फूट निकला।"[12] गुरु को भक्ति-मुक्ति का दाता मानना उचित है क्योंकि वह शिष्य का पूर्ण रूपांतरण करने में सक्षम है। आध्यात्मिक दृष्टि से सभी संतों ने गुरु महिमा को स्वीकार किया है।

नितानंद जी मनुष्य के विकास में जाति वर्ण-व्यवस्था को अवरोधक मानते थे क्योंकि लोग व्यवहारिक उपयोगिता के महत्त्व को भुलाकर मानव-मानव में भेद करने लगे थे। उनका यह दृष्टिकोण समाज की उन्नति में बाधा बन रहा था। मानव समाज की इस पीड़ा को उन्होंने नज़दीक से अनुभव किया और उनके सुरक्षा तंत्र बनकर पररक्षा में संलग्न हो गए। वे हिन्दू-मुस्लिम का भेद व्यर्थ मानते हैं। यह सारा संसार एक ही नूर से बना हुआ है। असली भेद तो मनुष्य के कर्म करने में है, जिस पर वे गहरी चोट करते हैं। सबसे पहले तो इस बात पर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि एक तरफ़ तो मुस्लिम मस्जिद में ऊँची बांग देकर अल्लाह हू अकबर (खुदा) पुकारता है तो दूसरी तरफ़ कहता है कि सब का अल्लाह एक है। दोनों बातों पर यह सवाल खड़े होते हैं? ऊँची अजान देने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि वह तो तेरे ही भीतर विद्यमान है। दूसरा, सब का से मतलब ब्रह्मांड के सभी जीवों से है, फिर जीव हत्या करते हुए अपनी बात को भूल क्यों जाता है-

"काबे की हज क्या करै, दुई रही दरम्यान।

उनको अल्लाह सब जगह, जिनका साफ़ इमान॥"[13]

भ्रम में पड़ा हुआ जैसा इन के लिए मुल्ला है वैसा ही हिन्दू।अपने ही संशय में उलझा रहने वाला पंडित दूसरों का कभी हित नहीं कर सकता। अगर उसके आंतरिक भाव पाक्-पवित्र नहीं हैं तो ब्राह्मण कुल में जन्म लेने या बाहरी आचरण मात्र के दिखावे भर से वह कदापि ऊँचा नहीं हो सकता। कुलीनता और अभिजात्य की आड़ में इन्होंने पापाचार को पनपते देखा था। नितानंद ने स्वयं ब्राह्मण के घर जन्म लिया परन्तु वे मानते हैं कि उस कुलीनता में भी सुधार की गुंजाइश थी-

" ब्राह्मण कुल में जन्म था, करता बहुत मरोड़।

गुरु गुमानीदास जी, दिया कुबध तोड़॥

टेढ़े टेढ़े चालते, टेढ़ी धरते पाग।

गुरु गुमानीदास जी, दिया ज्ञान वैराग॥"[14]

उनका लक्ष्य अत्यंत उदात्त है। वे जाति से ज़्यादा विवेकपूर्ण जीवन को महत्त्व देते हैं। विवेकी व्यक्ति का हृदय बैकुण्ठ धाम के समान होता है, जो स्वयं परब्रह्म का निवास है। जहाँ जाति-पाति, ऊँच-नीच की हीन भावना समाप्त हो जाती है। वे तो यहाँ तक कह देते हैं कि साधु और लक्ष्मी भी बड़भागी (विवेकी) को नसीब होती है, भागहीन (अविवेकी) को नहीं। ऊँचे कुल में जन्म लेकर भी कोई व्यक्ति अपने जीवन को तब तक श्रेष्ठ नहीं बना सकता, जब तक वह विषयी, लम्पट, निंदा, झूठ, कपट, व अविवेक के कुल-अभिमान का बोझ अपने सिर पर लादे फिरता रहेगा। नितानंद जी के अनुसार श्रेष्ठता और उच्चता तो भगवद्भक्ति सत्कर्मों में व्याप्त है। कथन को आचरण में न डालना सबसे बड़ी मूर्खता है। सत्यवादिता ही मनुष्यता की सही पहचान है, बाकी तो पशुत्व की सीमाओं को लाँघे हुए हैं -

"जो कुछ कहा सो ना करै, अन्तर्गत सत नाहिं।

सो नर सुकर स्वान ज्यों, भटक मरां जग मांहि॥"[15]

सांप्रदायिकता का विरोध करने वाले नितानंद जी ने हमेशा मूल्यमूढ़ व ढोंगी-पाखंडी, लम्पट अज्ञानियों को जमकर लताड़ा है जो दम्भ के नशे में चकनाचूर होकर अपने को जगत-गुरु बताकर खुलेआम लोभ, तृष्णा में डूबे रहते हैं। भोली-भाली जनता को बहकाकर भूत-प्रेतादि की भयानक छाया बताकर उन्हें भ्रम में डाल देते हैं। नित्यानंद जी का कहना है कि ऐसे लोभी-लुटेरों से दूर रहना चाहिए-

"लोभी स्वामी कलियुगी, लेने के सभ दाँव।

घर घर द्वारै यों फिरैं, ज्यों ताते दूध भुलावे॥"[16]

भिन्न-भिन्न पंथों के लोग अलग-अलग पचड़ों में उलझे हुए हैं। शाक्त लोग शक्ति-पूजा के आधार पर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु हरि जनों से दूर रहते हैं। बिना ज्ञान के वे अँधेरे में हैं। नितानंद जी की वाणियों में कही गई बातें आज के नक़ली साधु-संतों पर खरी उतरती हैं। उनके भीतर सच्चा ज्ञान नहीं है। कुछ संमप्रदाय वाले केवल पत्थर के पुजारी हैं। नितानंद जी इस मूर्ति-पूजा से आहत हैं। पण्डित-पुजारी के झगड़े की जड़ यह अज्ञान ही है। नितानंद जी सच्चाई को सामने लाना चाहते हैं-

"पाथर से ठाकुर बने, तो हर से बड़ा पहाड़।

नितानंद साँची कहै, करै पुजारी राड़॥"[17]

अनेक प्रकार से विभिन्न संप्रदायों के स्वामियों के ढोंगपूर्ण व्यवहार की भर्त्सना करते हुए उन्होंने सत्य, अहिंसा और प्रेम आदि उदात्त मूल्यों को वन्दनीय माना है। सांसारिकता में लिप्त होकर न तो हरि चरणों तक पहुँचा जा सकता है न ही कोई पद प्रतिष्ठा के शीर्ष तक पहुँचा जा सकता है। नितानंद जी की वाणी में शीलोदात्त् के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण सुलभ हैं-

"पख ले भूल्या जगत सभ,चल्या झूठ के साथ।

समुद्र मांहि रीता रह्या, रत्न न आया हाथ॥"[18]

"पखा-पखी को छोड़ दो, पखा-पखी में काल।

नितानंद निरबंध की, निपट नवेली चाल॥"[19]

यह नितानंद जी के काव्य का औदात्त्य ही है जो मनुष्य को सत्पथ की ओर अग्रसर करता है। उनकी मर्यादित नारी विषयक धारणा अत्यंत संतुलित एवं स्वस्थ है। मर्यादित काम को वे कभी बुरा नहीं मानते। पतिव्रता व भक्त नारी को वे सच्चे साधक के समान पूर्ण सम्मान देते हैं। पतिव्रता नारी एकनिष्ठ, पवित्र होती है, शील एवं चरित्र ही उसका श्रृंगारिक आधार है। उसे अन्य श्रृंगारिक प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं होती। वे ऐसी अनुपम नारी को वन्दनीय मानते हैं-

"पतिव्रता के चरण की, धरूँ सीस पर धूर।

सभी दासन की दास मैं, नितानंद अति कूर॥"[20]

उन्होंने केवल नारी के उन्मत्त एवं प्रमत्त रूप की आलोचना की है। वे नारी विरोधी क़तई नहीं हैं बल्कि वे नारी के उस रूप को हेय मानते हैं, जो उसे अमर्यादित कुपथ की ओर ले जाता है। नारी के कामिनी रूप के साथ उन्होंने पुरुष के कामी रूप को भी बराबर मात्रा में घृणित माना है। उन्होंने कामी पुरुष को नरक के कीड़े की संज्ञा दी है।कहीं-कहीं तो उसकी तुलना गधे और स्वान से की है। दोनों का ही प्रभाव साँप व शेर से भी ज़्यादा

अचूक मार करने वाला ख़तरनाक तथा विकारग्रस्त है। कामासक्ति का प्रभाव इतना घातक है कि यह साधारण व्यक्ति को ही नहीं, अपितु पण्डित, ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, ऋषि, मुनि व बैकुण्ठवासी सूर आदि सभी को परास्त करके अपनी सम्मोहक शक्ति द्वारा उनके बल, बुद्धि, विवेक एवं भक्ति का संहार कर देती है। भगवदभक्ति को निहारने वाली आँखे तक बंद हो जाती हैं। कामिनी रूप ज़हरीली नागिन के समान है। जिसके विषदंश से तीनों लोक प्रभावित होते आए हैं। सामान्य नारी ही नहीं, अप्सराएँ भी विकारग्रस्त हैं, जो पथ भ्रष्टता एवं वासना की चपेट में हैं, उनके इस रूप को नितानंद जी निंदा एवं तिरस्कार के योग्य मानते हैं-

"क्या रम्भा क्या अप्सरा, कहाँ उर्वशी नार।

नितानंद विष की भरी, सभ में वही विकार॥"[21]

नितानंद जी के उदात्त प्रेम और सौंदर्य की आध्यात्मिक दिव्यानुभूति उनके धैर्य, सहिष्णुता, सत्य, करुणा एवं समता के विचारों में चमत्कृत सी हो जाती है। राजदेव सिंह संतों मानवतावादी विचारों की प्रासंगिकता के संदर्भ में लिखते हैं- "कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कहना है कि अगर विश्व शांति के लिए विधि-मार्ग का संधान करना हो तो संतों का साहित्य पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकता है। काण्ट के मत से संत काव्य हर उदात्त काव्य की तरह यह काव्य भी भाव शान्ति और भाव-निवृत्ति का काव्य है। हीगेल इसे सार्वभौम सत्य और आध्यात्मिकता पाप काव्य मानते हैं। बैडले इसे महानता और आत्मविस्तार की अनुभूति मानते हैं।"[22] वास्तव में यह काव्य मानवीय उत्कर्ष का काव्य है। इनके काव्य में अनेक स्थानों पर लोक कल्याण की भावना झंकृत हुई है जो उदात्त की धोतक है।

नितानंद जी के सभी भक्तों का एक ही वैष्णव सम्प्रदाय अथवा एक ही जाति थी। उनके लिए ईश्वर की जाति से बढ़कर कोई दूसरी जाति थी ही नहीं। यह सम्प्रदायवाद ही है जो मानव-चिंतन को कुंठित करता है, किंतु सच्चे साधक इन हदों से परे रहते हैं। साथ ही साथ वे समाज में व्याप्त अंधविश्वास व अज्ञानता के व्यापारों को भी मानव जाति के ऊपर अभिशाप मानते हैं, क्योंकि सच्चे मानवतावादी के लिए ऐसी परंपराएँ हेय हैं, जो समाज को बाँटने का प्रयास करती हैं। इसलिए वे ऐसी मृत प्रथाओं का दृढ़ता से खंडन करते हैं -

"चेतन साहब छोड़ कर, जड़ को पूजन जाय।

नितानंद नहीं दूध दे, कदे काठ की गाय।"[23]

उनके काव्य में विषयवस्तु के औदात्त्य के साथ-साथ शैलीगत उदात्त का भी मणिकांचन संयोग हुआ है। उनका भाषा-शिल्प भाषाई समूह, अलंकार, छंद, बिम्ब एवं प्रतीक योजना के अद्भुत समावेश से भाव प्रकाशन में वृद्धि हुई है॥ सामाजिक जीवों का उद्धार करने के लिए उनकी अभिव्यक्ति भी व्यावहारिक जीवन से जुड़ी हुई है। वे कहीं निंदा को 'नरक का पैंडा', कहीं माया को 'कूकरी', संसार को 'पीहर', वन व 'वृक्ष', विषय-वासनाओं को विष की बाड़ी, भ्रमर, 'चोर', हरि जन को 'हस्ति का सवार' व 'हंस', मन की चंचलता को हाथी, तुरंग, भुजंग, मृग की उपमा देकर सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। उनके मानस-बिंब का एक सुंदर निदर्शन देखिए-

"जिस घट बासा विरह का, बसे न विषय विकार।

ता बन पशु ना ठाहरे, करे सिंह गुजार॥"[24]

उपर्युक्त पर्यालोचन से स्पष्ट है कि उनके काव्य में उदात्त भावना की अनेक स्थलों पर कलात्मक चित्रण के रूप में अभिव्यक्त हुई है। नितानंद जी की अनमोल रचना का एक-एक शब्द उनके जीवन-दर्शन पर आधारित, उनके योगदान को जाने बिना संत परम्परा की पहचान अधूरी रह जाती है। आत्मानुभूति को आधार बनाकर उन्होंने

प्रेम, विश्वास, करुणा व भक्ति भाव के द्वारा लोकमंगल की जो ज्योति जलाई, उसने साधारण जनता का पथ तो आलोकित किया ही, साथ ही परवर्ती कवियों का भी मार्गदर्शन किया।

शोध सूची:

1. हरदेव बाहरी, वृहत् अंग्रेज़ी - हिन्दी शब्दकोश, भाग 2, पृ. 1870
2. कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.117
3. नगेन्द, काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ. 44
4. गणपतिचंद्र गुप्त,साहित्यिक निबंध, पृ.114
5. स्वामी नितानंद, सं.भोलादास प्रज्ञाचक्षु, सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, मारवाड़ी प्रेस, हैदराबाद, 2017 वि., साखी - 19-20, पृ. 238
6. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 86, पृ. 107
7. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 8,9 पृ. 77
8. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 13, पृ. 150
9. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 141, पृ.162
10. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 28, पृ. 3
11. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 185, पृ. 65
12. रामनारायण पाण्डेय, भक्ति काव्य में रहस्यवाद, पृ. 347
13. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 75, पृ. 172
14. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 25-26, पृ.3
15. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 40, पृ.168
16. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 6, पृ.165
17. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी -16, पृ. 197
18. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 2, पृ. 335
19. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश , साखी - 25, पृ. 203
20. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 99, पृ. 99
21. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, साखी - 66, पृ. 179
22. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ. 7
23. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, सा.14, पृ. 147
24. सत्य-सिद्धान्त-प्रकाश, सा.71, पृ. 36